Registered Under Act XX of 1847.

प्रेमजोगिनी।

नाटिका।

रतभूषण भारतेन्दु श्री बाबू हरिश्चन्द्र विरचित.

क्षत्रियपत्रिका सम्पादक म०कु०बाबू रामदीन सिंह संकलित।

बाबू रामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित.

KHADGA VILAS PRESS BANKIPUR

75

बांकीपुर—खड्गविलास प्रेस में बा० च० प्र० सिंह द्वारा मुद्रित.

ह० सं० ३०—१९१४ ई०

2.00

तीसरी वार.

प्रेमजोगिनी।

नाटिका।

नान्दी मंगल पाठ करता है।

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ॥ १ ॥

और भी—

जिन तृन सम किय जानि जिय, कठिन जगत जंजाल।
जयतु सदा सो ग्रन्थ कवि, प्रेमजोगिनी बाल ॥२॥

(मलिन मुख किये सूत्रधार और पारिपार्श्वक आते हैं।)

सूत्रधार।—(नेत्र से आंसू पोंछ और ठंढी सांस भर कर) हा! कैसे ईश्वर पर विश्वास आवै!

पारिपार्श्वक।—मित्र, आज तुम्हें क्या हो गया है और क्या बकते हो और इतने उदास क्यों हो?

सूत्रधार।—(नेत्र से जल की धारा बहती है और रोकने से भी नहीं रुकती।)

पारिपार्श्वक।—(अपने गले में सूत्रधार को लगा कर और आंसू पोंछ कर) मित्र, आज तुम्हें हो क्या गया है? यह क्या सूझी है? क्या आज लोगों को यही तमाशा दिखाओगे?

सूत्रधार।— हो क्या गया है? क्या मैं झूठ कहता हूं?— इस से बढ़ कर और दुःख का विषय क्या होगा कि मेरा आज इस जगत के कर्त्ता और प्रभु पर से विश्वास उठा जाता है और सच है क्यों न उठे, यदि कोई हो तब न न उठै। हा! क्या ईश्वर है तो उस के यही काम हैं जो संसार में हो रहे हैं? क्या उस की इच्छा के बिना भी कुछ होती है? क्या लोग दीनबन्धु दयासिन्धु उस को नहीं कहते? क्या माता पिता के सामने पुत्र की, स्त्री के सामने पति की और बन्धुओं के सामने बन्धुओं की मृत्यु उस के इच्छा बिना ही होती है? क्या सज्जन लोग विद्यादि सुगुण से अलंकृत हो कर भी उस के इच्छा बिना ही दुखी होते हैं और दुष्ट मूर्खों के अपमान सहते हैं? केवल प्राणमात्र नहीं त्याग करते, पर उन की सब गति हो जाती है। क्या इस कमलबनरूप भारतभूमि को दुष्ट गजों ने उस की इच्छा बिना ही छिन्न भिन्न कर दिया? क्या जब नादिरचंगेज़खां ऐसे निर्दयों ने लाखों निर्दोषी जीव मार डाले तब वह सोता था? क्या अब भरतखण्ड के लोग ऐसे कापुरुष और दीन उस की इच्छा के बिनाही हो गए? हा! (आंसू बहते हैं) लोग कहते हैं कि यह उस के खेल हैं, छिः! ऐसे निर्दय को भी लोग दयासमुद्र किस मुंह से पुकारते हैं?

पारिपार्श्वक।—इतना क्रोध एक साथ मत करो। यह संसार तो दुःखरूप आप ही है, इस में सुख का तो केवल आभास मात्र है।

सूत्रधार।—आभास मात्र है—तो फिर किस ने यह बखेड़ा बनाने कहा था और पचड़ा फैलाने कहा था? उस पर

भी न्याव करने और कृपाल बनने का दावा (आंख भर आती है) !

पारिपार्श्वक।– आज क्या है ? किस बात पर इतना क्रोध किया है ? भला यहां ईश्वर का निर्णय करने आए हौ कि नाटक खेलने आए हौ ?

सूत्रधार।– क्या नाटक खेलैं क्या न खेलैं, लो इसी खेलही में देखो। क्या सारे संसार के लोग सुखी रहैं और हम लोगों का परमबन्धु, पिता मित्र पुत्र सब भावनाओं से भावित, प्रेम की एकमात्र मूर्त्ति, सत्य का एकमात्र आश्रय, सौजन्य का एकमात्र पात्र, भारत का एकमात्र हित, हिन्दी का एकमात्र जनक, भाषा नाटकों का एकमात्र जीवनदाता, हरिश्चन्द्र ही दुखी हो (नेत्र में जल भर कर)—हा सज्जन शिरोमणे ! कुछ चिन्ता नहीं, तेरा तो बाना है कि कितना भी 'दुख हो उसे सुख ही मानना' लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्त्ति तक का परित्याग कर दिया है और जगत से विपरीत गति चल के तू ने प्रेम की टकसाल खड़ी की है। क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुझे प्रत्यक्ष आ कर अपने अंक में रख कर आदर नहीं देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निन्दा करते हैं और तू संसारी वैभव से सूचित नहा है; तुझे इस से क्या, प्रेमी लोग जो तेरे और तू जिन्हें सरबस है व जब जहां उत्पन्न होंगे तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरी रहन सहन को अपनी जीवनपद्धति समझैंग (नेत्र से आंसू गिरते हैं) मित्र तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हौ; तुम्हैं इन की निन्दा से क्या ? इतना चित्त क्यों क्षुब्ध करते हौ ? स्मरण रक्खो ये कीड़े

ऐसे ही रहैंगे और तुम लोकबहिष्कृत हो कर भी इन के सिर पर पैर रख के बिहार करोगे, क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए—" कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछे प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जायँगी।" मित्र मैं जानता हूं कि तुम पर सब आरोप व्यर्थ है; हा! बड़ा विपरीत समय है (नेत्र से आंसू बहने हैं)।

पारिपार्श्वक।—मित्र, जो तुम कहते हो सो सब सत्य है, पर काल भी तो बड़ा प्रबल है, कालानुसार कर्म्म किए बिना भी तो काम नहीं चलता।

सूत्रधार।—हां, न चलै तो हम लोग काल के अनुसार चलेंगे, कुछ वह लोकोत्तर चरित्र थोड़े ही काल के अनुसार चलैगा!!

पारिपार्श्वक।—पर उस का परिणाम क्या होगा?

सूत्रधार।—क्या कोई परिणाम होना अभी बाकी है? हो चुका जो होना था।

पारिपार्श्वक।—तो फिर आज जो ये लोग आए हैं सो यहीं सुनने आए हैं।

सूत्रधार।—तो ये सब सभासद तो उस के मित्रवर्गों में हैं और जो मित्रवर्गों में नहीं हैं उन का जी भी तो 'उसी की बातों में लगता है। ये क्यों न इन बातों को आनन्द-पूर्व्वक सुनैंगे?

पारिपार्श्वक।—परन्तु मित्र बातों ही से तो काम न चलैगा न! देखो ये हिन्दी भाषा में नाटक देखने की इच्छा से आए हैं, इन्हें कोई खेल दिखाओ।

सूत्रधार।—आज मेरा चित्त तो उन्हीं के चरित्र में मगन है। आज मुझे और कुछ नहीं अच्छा लगता।

पारिपार्श्वक।—तो उन के चरित्र के अनुरूप ही कोई नाटक करो।

सूत्रधार।—ऐसा कौन नाटक है? यों तो सभी न्यायकों के चरित्र किसी किसी विषय में उस से मिलते हैं, पर आनुपूर्व्वी चरित्र कैसे मिलैगा?

पारिपार्श्वक।—मित्र! मृच्छकटिक हिन्दी में खेलो, क्योंकि उस के नायक चारुदत्त का चरित्रमात्र इन से सब मिलता है, केवल बसन्तसेना और राजा की हानि है।

सूत्रधार।—तो फिर भी आनुपूर्व्वी न हुआ और पुराने नाटक खेलने में इन का जी भी न लगैगा कोई नया खेलें।

पारिपार्श्वक।—(स्मरण कर के) हां हां, वह नाटक खेलो जो तुम उस दिन उद्यान में उन से सुनते थे। वह उन के और इस घोरकाल के बड़ा ही अनुरूप है। उस के खेलने से लोगों को वर्त्तमान समय का ठीक नमूना दिखाई पड़ेगा और वह नाटक भी नई पुरानी दोनों रीति मिल के बना है।

सूत्रधार।—हां हां प्रेमजोगिनी—अच्छी सुरत पड़ी—तो चलो योंही सही, इसी बहाने उस का स्मरण करें।

पारिपार्श्वक।—चलो। (दोनों जाते हैं)

(अर्द्ध जवनिकापतन)

इति प्रस्तावना।

पहिले गर्भाङ्क के पात्र।

टेकचन्द	...	एक महाजन बनिया।
छक्कू जी	...	,,
माखनदास	...	वैष्णव बनिया।
धनदास		नाम के वैष्णव।
वनितादास		
गिरिश	...	कीर्त्तन करनेवाला।
झपटिया	...	कोड़ा मार कर मन्दिर की भीड़ हटानेवाला।
जलघरिया	...	पानी भरनेवाला।
बालमुकुन्दमल जी		दो भाई मुलतानी वैष्णव।
रामचन्द्र	...	नायक।
दो गुजराती	...	—

प्रथम अंक।

पहिला गर्भांक।

स्थान मन्दिर का चौक।

झपटिया इधर उधर घूम रहा है।

झपटिया।—आज अभी तक कोई दरसनी परसनी नाहीं आये और कहां तक अभहिंन तक मिसरो नहीं आये अभहीं तक नींद न खुली होइहै। खुलै कहां से आधी रात तक बाबू किहां बैठ के ही ही ठी ठी करा चाहैं, फिर सबेरे नींद कैसे खुलै (दोहर माथे में लपेटे आंखें मलते मिश्र आते हैं)—(देख कर)।

झपटिया।—का हो मिसिर जी, तोरी नींद नहीं खुलती? देखो शंखनाद होय गवा मुखिया जी खोजत रहे।

मिश्र।—चले तो आईथे अधियै रात के शंखनाद होय तो हम का करैं। तोरे तरह से हमहू के घर में से निकस के मंदिर में घुस आवना होता तो हमहू जल्दी अउते। हियां तो दारानगर से आवना पड़त है। अबहीं सुरजौ नाहीं उगे।

झपटिया।—भाई, सेवा बड़ी कठिन है, लोहे का चना चबावे के पड़थै फोकटे थोरे होथी।

मिश्र।—भवा चलो अपना काम देखो (बैठ गया)।

(स्नान किये तिलक लगाये दो गुजराती आते हैं)

पहिला।—मिसिर जी, जय श्री कृष्ण। कहो का समय है?

मिश्र।-अच्छी समै है मंगला की आधी समय है। बैठो।

पहिला।—अच्छा मथुरा दास जी बैसी जाओ (बैठते हैं)।

(धोती पहिने १ धोती ओढ़े छक्कू जी आते हैं और उसी बेश से माखन दास भी आये)।

छक्कू जी।—(माखन दास की ओर देख कर (काहो माखन दास पहर आवो।

माखन दास।—(आगे बढ़ कर हाथ जोड़ कर) जैसी कृष्ण साहब।

छक्कू जी।—जै श्रीकृष्ण, बैठो। कहा आज कल बाबू रामचन्द का क्या हाल है ?

माखन दास।—हाल जौन है तौन आप जनते हौ, दिन दूना रात चौगूना। अभंई कल्हौ हम ओ रास्ते रात के आवत रहे तो तबला ठनकत रहा। बस रात दिन हा हा ठी ठी बहुत भवा दुइ चार कवित्त बनाय लिहिन बस होय चुका।

छक्कू जी।—अरे कवित्त तो इन के बापौ बनावत रहे। कवित्त बनावे से का होथै और कवित्त बनावना कुछ अपने लोगन का काम थोरे हय ई भांटन का काम है।

माखन दास।—ई तो हई है पर उन्हें तो ऐसी सेखी है कि सारा जमाना मूरख है औ मैं पण्डित। थोड़ा सा कुछ पढ़ बढ़ लिहिन है।

छक्कू जी।—पढ़िन का है पढ़ा बढ़ा कुछ भी नहिनी पहर, ओहर की दुइ चार बात सीख लिहिन किरिस्तानी मते की अपने मारग की बात तो कुछ जनवै नाहीं कतैं, अबहीं कल के लड़का हैं।

माखन दास।—और का।

(बालमुकुंद औ मल जी आते हैं)।

दोनों।—(छक्कू की ओर देख कर) जय श्रीकृष्ण बाबू साहब।

छक्कू जी ।—जय श्रीकृष्ण, आओ बैठो, कहो नहाय आयो?

बाबू साहब ।—जी, भय्या जी का तो नेम है कि बड़े सबेरे नहाकर फूलघर में आते हैं तब मंगला के दर्शन कर के तब घर में जाय कर सेवा में नहाते हैं और मैं तो आज कल कार्तिक के सबब से नहाता हूं, तिस पर भी देर हो जाती है। रोकड़ का मेरे जिम्मे काका जी ने कर रक्खा है इससे बिध विध मिलाते देर हो जाती है, फिर कीर्त्तन होते प्रसाद बटते ब्यालू वालू कर्ते १२ कभी १ बजते हैं।

छक्कू जी ।—अच्छी है जो निबही जाय; कहो कातिक नहाय बाबू रामचंद जाथैं की नाहीं?

बाबू ।—क्यों, जाते क्यों नहीं? अब की दोनों भाई जाते हैं, कभी दोनों साथ, कभी आगे पीछे, कभी इन के साथ मसाल, कभी उन के, मुझ को अक्सर कर के जब मैं जाता हूं तब वह नहा कर आते रहते हैं।

छक्कू जी ।—मसाल काहे ले जाथैं मेहरारून का मुंह देखै के?

बाबू ।—(हंस कर) यह मैं नहीं कह सकता।

छक्कू जी ।—कहो मल जी, आज फूल घर में नाहीं गयो हिंअई बैठ गयो?

मल जी ।—आज देर हो गई, दर्शन कर के जाऊंगा।

छक्कू जी ।—तोरे हियां ठाकुर जी जागे होहिंहै कि नाहीं?

मल जी ।—जागे तो न होंगे पर अब तैयारी होगी। मेरे हियां तो स्त्रियें जगा कर मंगल भोग धर देती हैं। फिर जब मैं दर्शन कर के जाता हूं तो भोग सरा कर आरती करता हूं।

छक्कू जी।—कहो तोसे रामचंद से बोलाचाली है कि नाहीं ?

मल जी।—बोलचाल तो है, पर अब वह बात नहीं है। आगे तो दर्शन करने का सब उत्सवों पर बुलावा आता था अब नहीं आता, तिस्में बड़े साहब तो ठीक ठीक, छोटे चित्त के बड़े खोटे हैं।

नेपथ्य में—गरम जल की गागर लाओ।

झपटिया।—(गली की ओर देख कर जोर से) अरे कौन जलघरिया है ? एतनी देर भई अभ हीं तोरे गागर लिआवै की वखत नाहीं भई ?

[सड़सी से गरम जल की गगरी उठाये सनिया लपेटे जलघरिया आता है]

झपटिया।—कहो जगेसर, ई नाहीं कि जब शंखनाद होय तब झटपट अपने काम से पहुंच जावा करो।

जलघरिया।—अरे चल्ले तो आवथई का भहराय पड़ी ? का सुत्तल थोड़े रहली ? हम हूं के झापट कन्धे पर रख के एहर ओहर घूमै के होतै तब न। इहां तो गगरा ढोवत ढोवत कन्धा छिल जाला (यह कह कर जाता है)।

[मैली धोती पहिने दोहर सिर में लपेटे टेकचन्द आये।]

टेकचन्द।—(मथुरा दास की ओर देख कर) कहो मथुरा दास जी, रूडा छो ?

मल जी।—हां साहेब, अच्छे हैं। कहिये तो सही आप इतने बड़े उच्छव में कलकत्ते से नहीं आये ! हियां बड़ा सुख हुवा था बहुत से महाराज लोग पधारे थे। षट रुत छप्पन भोग में बड़े आनंद हुवे।

टेकचंद।—भाई साहब, अपने लोगन का निकास घर से बड़ा मुसकिल है। एक तो अपने लोगन का रेल के सवारी से बड़ा बखेड़ा पड़ता है, दुसरे जब जौन काम के वास्ते जाओ जब तक ओका सब इन्तजाम न बैठ जाय तब तक हुंवा जाये से कौन मतलब है और सुख तो भाई साहब श्री गिरराज जी महाराज के आगे जो जो देखा है सो अब सपने में भी नहीं है। अहा! वह श्री गोबिंद राय जी के पधारने का सुख कहां तक कहैं।

(धनदास और बनितादास आते हैं।)

धनदास।—कहो यार का तिगथी?

बनितादास।—भाइ साहब, बड़ी देर से देख रहे हैं, कोई पंच्छी नजर नाहीं आया।

धनदास।—भाई साहेब, अपने तो ऊ पंच्छी काम का जे भोजन सोजन दूनो दे।

बनितादास।—तोहरे सिद्धान्त से भाई साहेब हमरा काम तो नहीं चलता।

धनदास।—तबै न सुरमा घुलाय के आंख पर चरणामृत लगाए हौ जे में पलकबाजी खूब चलै, हां एक पलक पहरो।

बनितादास।—(हंस कर) भाई साहेब अपने तो वैष्णव आदमी हैं, वैष्णवन से काम रक्खित है।

धनदास।—तो भला महाराज के कबौं समर्पन किए हौ कि नाहीं?

बनितादास।—कौन चीज?

धनदास।—अरे कोई चौकाली ठल्ली मावड़ी पामरी ठोमली अपने घरवाली।

बनितादास।—अरे भाई गोसांइयन पर तो ससुरी सब आपै भहराई पड़थीं पवित्र होवै के वास्ते, हम का पहुंचैवे।

धनदास।—गुरु, इन सबन का भाग बड़ा तेज है, मालो लूटे मेहररुवो लूटैं।

बनितादास।—भाई साहब, बड़ेन का नाम बेचथैं और इन सबन में कौन लच्छन हैं न पढ़ना जानैं न लिखना, रात दिन हा हा ठी ठी यैहै कि और कुछ?

धनदास।—और गुरु इन के बदौलत चार जीवन के और चैन है, एक तो भट दुसरे इन के सरबस खवास तिसरे बिरकत और चौथी बाई।

बनितादास।—कुछ कहै कि बात नहीं है। भाई मंदिर में रहै से स्वर्ग में रहै। खाए के अच्छा पहिरै के परसादी से महाराज कब्बौं गाढ़ा तो पहिरबै न करियैं, मलमल नागपुरी ढांकै पहिरियैं, अतरे फुलेल केसर परसादी बीड़ा चाभो सब से सेबकी ल्यौ, ऊपर से ऊ बात का सुख अलगै है।

धनदास।—क्या कहैं, भाई साहब! हमरो जनम हियंई होता।

बनितादास।—अरे गुरु, गलीगली तो मेहरारू मारी फिरथीं तो हैं एहू पर रोनै बना है। अब तो मेहरारू टके सेर हैं। अच्छे अच्छे अमीरनौ के घर की तो पैसा के वास्ते हाथ फैलावत फिरथीं।

धनदास।—तो गुरु, हम तो ऊ तार चाही थे जहां से उलटा हमैं कुछ मिलै।

बनितादास।—भाग होय तो ऐसियो मिल जांय, देखो

लाड़ली प्रसाद के और बच्चू के ऊ नागरनी और ब्रह्म-
निया मिली हैं कि नहीं।

धनदास।—गुरु, हियां तो चाहे मूड़ मुड़ाए होय चाहै मुंह में एको दांत न होय पतालीखेल होय, पर जो हथफेर दे सो काम की।

बनितादास।—तोहरी हमरी राय ई बात में न मिलिये।

[रामचन्द ठीक इन दोनों के पीछे का किवाड़
खोल कर आता है।]

छक्कू जी।—(धीरे से मुंह बना के) ई आएं (सब लोगों से जय श्रीकृष्ण होती है)।

बाबू।—(रामचन्द को अपने पास बैठा कर) कहिये बाबू साहब, आज कल तो आप मिलते ही नहीं क्या खबगी रहती है ?

रामचन्द।—भला आप ऐसे मित्र से कोई खफा हो सकता है ? यह आप कैसी बात कहते हैं ?

बाबू।—कार्त्तिक नहान होता न है ?

रामचन्द।—(हंस कर) इस में भी कोई सन्देह है !

बाबू।—हंहंहं फिर आप तो जो काम करैंगे एक तज़वीज के साथ ऐं।

(रामचंद का हाथ पकड़ के हंसता है।)

रामचंद।—भाई ये दोनों (धनदास और बनितादास को दिखा कर) बड़े दुष्ट हैं। मैं किवाड़ी के पीछे खड़ा सुनता था। घंटों से ये स्त्रियों ही की बात करते थे।

बाबू।—यह भवसागर है। इसमें कोई कुछ बात करता है, कोई कुछ बात करता है। आप इन बातों का कहां

तक खयाल कीजिएगा ऐं! कहिऐं कचहरी जाते हैं कि नहीं?

रामचन्द।—जाते हैं कभी कभी—जी नहीं लगता, मुफत की बेगार और फिर हमारा हरिदास बाबू का साथ कुकुरझौंझौं, हुज्जते बंगाल माथा खाली कर डालते हैं। खांव खांव कर के, थूंक थूंक के, वीभत्स रस के आलम्बन—सूर्य्यनंदन—

बाबू।—(हंस कर) उपमा आप ने बहुत अच्छी दिया और कहिये। और अंधरी मजिस्टरों का क्या हाल है?

रामचन्द।—हाल क्या है सब अपने अपने रंग में मस्त हैं। काशी परसाद अपना कोठीवाली ही में लिखते हैं, सहजादे साहब तीन घंटे में एक सतर लिखते हैं; उस में भी सैकड़ों गलती। लच्मी सिंह और शिव सिंह अच्छा काम करते हैं और अच्छा प्रयाग लाल भी करते हैं; पर वह पुलिस के शत्रु हैं। और विष्णुदास बड़े Cunning chap हैं, दीवान राम हई नहीं, बाकी रहे फ़िज़िशियन सो वे तो अंग्रेज ही हैं, पर भाई मूर्खों को बड़ा अभिमान हो गया है, बात बात में तपाक दिखाते और छ महीने को भेज दूंगा कहते हैं।

बाबू।—मैं कनमचाप नहीं समझा।

रामचन्द।—कनिङ्चैप माने कुटीचर।

नेपथ्य में।—श्री गोविन्द राय जी की श्री मंगला खुली (सब दौड़ते हैं)।

(परदा गिरता है)।

इति मन्दिरादर्शनामक प्रथम गर्भाङ्क।

दूसरे गर्भाङ्क के पात्र।

दलाल	...	— —
गंगापुत्र	...	तीर्थस्थ ब्राह्मण।
भंडेरिया	...	लिंगिया
दूकानदार	...	—
सुधाकर	...	रामचंद (नाटक के नायक) का मुसाहब।
भूरीसिंह	...	बदमाश
परदेसी	...	—

दूसरा गर्भाङ्क ।

(स्थान—गैबी, पेड़, कूवा, पास बावली) ।

(दलाल, गंगापुत्र, दूकानदार, भंडेरिया और भूरीसिंह बैठे हैं)।

दलाल।—कहो गहन यह कैसा बीता? ठहरा भोग विलासी
माल वाल कुछ मिला, या हुआ कोरा सत्यानासी?
कोई चूतिया फंसा या नहीं? कोरे रहे उपासी?

गंगापुत्र। – मिलै न काहे भैया, गंगा मैया दौलत दासी।
हम से पूत कपूत को दाता, मनकनिका सुखरासी॥
भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी।

दूकानदार।—परदेसिया बहुत रहे आए?

गंगापुत्र।—और साल से बढ़ कर।

भंडेरिया।—पितर सौंदनी रही न अमसिया।

भूरीसिंह।—रंग है पुराने झंझर। खूब बचा ताड़ओ का कहना तूं हौ चूतिया हंटर।

भंडेरिया।—हम न तड़बै तो के तड़िये यही किया जनम भर।

दलाल।—जो हो अब की भली हुई यह अमावसी पुनवासी।

गंगापुत्र।—भूखे पेट कोई नहिं सुतता ऐसी है ई कासी।

भूरीसिंह।—यार लोग तो रोजै कड़ाका करथै ऐ पैजामा।

गंगापुत्र।—ई तो झूठ कहथौ सिंहा।

भूरीसिंह।—तू सच बोल्यो मामा।

गंगापुत्र।—तौहैं का तू मार पीट के करथौ अपना कामा।
कोई का खाना, कोई की रंडी, कोई का पगड़ी जामा।

भूरीसिंह।—ऊ दिन खोपट दूर गए अब सोरहो दैएड एकासी।

गंगापुत्र।—भूखे पेट कोई नहिं सुतता ऐसी है ई कासी।

भूरीसिंह।—जब से आए नए मजिस्टर तब से आफत आई। जान छिपावत फिरीथै खटमल।

दूकानदार।—ई तो सच है भाई।

भूरीसिंह।—ई है ऐसा तेज गुरू बरसन के देथै लदाई।
गोविन्द पालक मेकलौडो से एकी जबर दोहाई।
जान बचावत छिपत फिरीथै घुस गई सब बदमासी।

गंगापुत्र।—भूखे पेट तो कोई नाहिं सुतता ऐसी है ई कासी।

भूरीसिंह।—तोरे आंख में चरबी छाई माल न पायो गोजर।
कैसी दून की सूझ रही है असमानों के उप्पर॥
तर न भए हौ पैदा कर के, घर के माल चुतरे तर।
बछिया के बाबा पंडिया के ताऊ, घुसनि के घुसघुस झरझर॥
कहां की ई तूं बात निकास्यो खासी सत्यानासी।
भूखे पेट कोई नहिं सुतता ऐसी है ई कासी॥

(गाता हुआ एक परदेसी आता है)

परदेसी।—देखी तुमरी कासी लोगो देखी तुमरी कासी।
जहां बिराजैं विश्वनाथ विश्वेश्वर जी अविनासी॥१॥

आधी कासी भाट भंडेरिया ब्राह्मन औ संन्यासी।
आधी कासी रंडी मुंडी रांड़ खानगी खासी॥२॥

लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे बे विसवासी।
महा आलसी झूठे शुहदे बे फिकरे बदमासी॥३॥

आप काम कुछ कभी करैं नहिं कोरे रहैं उपासी ।
और करे तो हसैं बनावें उस को सत्यानासी ॥ ४ ॥

अमीर सब झूठे औ निन्दक करें घात विश्वासी ।
सिपारसी डरपुकने सिट्टू बोलैं बात अकासी ॥ ५ ॥

मैली गली भरी कतवारन सड़ी चमारिन पासी ।
नीचे नल से बदबू उबलै मनो नरक चौरासी ॥ ६ ॥

कुत्ते भूकत काटन दौड़ैं सड़क सांड़ सों नासी ।
दौड़ैं बंदर बने मुछंदर कूदैं चढ़े अगासी ॥ ७ ॥

घाट जाओ तो गंगापुत्तर नोचैं देइ गलांसी ।
करैं घाटिया बस्तर मोचन देवे के सब झांसी ॥ ८ ॥

राह चलत भिखमंगे नोचैं बात करैं दाता सी ।
मंदिर बीच भंडेरिया नोचैं करैं धरम की गांसी ॥ ९ ॥

सौदा लेत दलालो नोचैं दे कर लासालासी ।
माल लिये पर दुकनदार नोचैं कपड़ा दे रासी ॥ १० ॥

चोरी भए पर पूलिस नोचैं हाथ गले बिच ढांसी ।
गए कचहरी अमला नोचैं मोचि बनावैं घासी ॥ ११ ॥

फिरैं उचक्का देदे धक्का लूटैं माल मवासी ।
कैद भए की लाज तनिक नहिं बे सरमी नंगा सी ॥ १२ ॥

साहेब के घर दौड़ैं जावैं चन्दा देहिं निकासी ।
चढ़ै बुखार नाम मन्दिर का सुनतहि होय उदासी ॥ १३ ॥

घर की जोरू लड़के भूखे बने दास औ दासी ।
दाल की मंडी रंडी पूजें मानो इन की मासी ॥ १४ ॥

आप माल कचरैं छानैं उठि भोरहिं कागावासी ।
बाप के तिथि दिन ब्राह्मन आगे धरैं सड़ा औ बासी ॥ १५ ॥

करि बेवहार साक बांधैं सब पूरी दौलत दासी।
घांलि रुपैया काढ़ि दिवाला माल डेकारैं ठांसी ॥ १६ ॥

काम कथा अमृत सो पीयैं समुझैं ताहि बिलासी।
राम नाम मुंह से नहिं निकलैं सुनतहि आवै खांसी ॥ १७ ॥

देखी तुमरी कासी भैया देखी तुमरी कासी।

भूरीसिंह।—कहो ई सरवा अपने सहर की एतनी निंदा कर गवा; तूं लोग कुछ बोलत्यौ नाहीं?

गंगापुत्र।—भैया अपना तौ जिजमान है अपने न बोलैंगे चाहे दस गारी भी देले।

भंडेरिया।—अपनो जिजमानै ठहरा।

दलाल।—और अपना भी गाहकै है।

दूकानदार।—और भाई हमहूं चार पैसा एके बदौलत पावा है।

भूरीसिंह।—तूं सब का बोलबो, तूं सब निरे दब्बू चप्पू हौ, हम बोलवैं (परदेसी से) ए चिड़ियाबावली के परदेसी फरदेसी! कासी की बहुत निन्दा मत करो। मुंह बस्सैये का कहैं के साहिब मजिस्टर हैं नाहीं तो निन्दा करना निकास देते।

परदेसी।—निकास क्यों देते? तुम ने क्या किसी का ठीका लिया है?

भूरीसिंह।—हां हां, ठीका लिया है मटियाबुर्जे।

परदेसी।—तो क्या हम

भूरीसिंह।—राम राम, तो
निरे पोथी के बेठन

परदेसी।—बेठन क्या ?

भूरीसिंह।—बे ते मत करो, गप्पो के नाहीं तो तोरी अरबी फारसी घुसेड़ देबै।

परदेसी।—तुम तो भाई अजब लड़ाके हो, लड़ाई मोल लेते फिरते हो, बे ते किस ने किया है? यह तो अपनी अपनी राय है; कोई किसी को अच्छा कहता है, कोई बुरा कहता है, इस से बुरा क्या मानना।

भूरीसिंह।—सच है पनचोरा, तू कहै सो सच्च, बुट्टी तू कह सो सच।

परदेसी।—भाई अजब शहर है लोग बिना बात ही लड़े पड़ते हैं।

(सुधाकर आता है।)

(सब लोग आशीर्वाद. दंडवत, आओ आओ शिष्टाचार करते हैं)

गंगापुत्र।—भैया इन के दम के चेन है। ई अमीरन के खेलउना हैं।

भूरीसिंह।—खेलउना का हैं टाल खजानची खिदमतगार सबै कुछ हैं।

सुधाकर।—तुम्हें साहब चरिंयै बूकना आता है।

भूरीसिंह।—चरीं का हमहन झूठ बोलीलः, अरे बखत पड़े पर तूं रंडी ले आवः, मंगल के मुजरा मिलै ओमें दस्तूरी काटः, पैर दाबः, रुपया पैसा अपने पास रक्खः, यारन के दूरे से झांसा बतावः पे ! ले गुरु तोहीं कहः हम झूठ कहथई।

गंगापुत्र।—अरे भैया बिचारे ब्राह्मण कोई तरह से अपना कालक्षेप करथैं ब्राह्मण अच्छे हैं।

भडेरिया।—हां भाई न कोई के बुरे में, न भले में और इन में एक बड़ी बात है कि इन की चालैं एक रंगै हमेसा से देखी थैं।

गंगापुत्र।—और साहेब एक अमीर पास रहै से इन की चार जगह जान पहिचान होय गई। अपनी बात अच्छी बनाय लिहिन है।

दूकानदार।—हां भाई बजार में भी इन की साक बंधी है।

सुधाकर।—भया भया, यह पचड़ा जाने दो; कहो यह नई मूरत कौन है?

भूरीसिंह।—गुरु साहब, हम हियां भांग का रगड़ा लगावत रहे, बीच में गइन के मारे पीटे ई धूआंकस आय गिरें। पिंजड़े में फंसा अब तो पुराना चंडूल, लगी गुलसन की हवा, दुम का हिलाना गया भूल (परदेसी के मुंह के पास चुटकी बजाता है और नाक के पास से उंगली ले कर दूसरे हाथ की उंगली घुमाता है)।

परदेसी।—भाई तुम्हारे शहर सा तुम्हारा ही शहर है यहां की लीला ही अपरम्पार है।

भूरीसिंह।—तोहूं लीला करथी।

परदेसी।—क्या?

भूरीसिंह।—नहीं ई जे तोहूं रामलीला में जाथौ कि नाहीं? (सब हंसते हैं)।

परदेसी।—(हाथ जोड़ कर) भाई, तुम जीते हम हारे, माफ़ करो।

झूरीसिंह।—(गाता है) तुम जीते हम हारे साधो तुम जीते हम हारे।

सुधाकर।—(आप ही आप) हा ! क्या इस नगर की यही दशा रहैगी ? जहां के लोग ऐसे मूर्ख हैं वह। आगे किस बात की वृद्धि की सम्भावना करैं ! केवल इस मूर्खता छोड़ इन्हें कुछ आता ही नहीं ! निष्कारण किसी को बुरा भला कहना ! बोली ही बोलने में इन का परम पुरुषार्थ ! अनाब शनाब जो मुंह से आया बक उठे, न पढ़ना न लिखना ! हाय ! भगवान इन का कब उद्धार करैगा !!

झूरीसिंह।—गुरु, का गुड़बुड़ गुड़बुड़ जपथौ।

सुधाकर।—कुछ नाहीं भाई यही भगवान का नाम।

झूरीसिंह।—हां भाई, संझा भई एह बेरा टें टें न किया चहिए, राम राम का बखत भई तो चलो न गुरु।

सब।—चलो भाई।

(जवनिका गिरती है)।

इति गेबी ऐबी नामक दूसरा गर्भाङ्क।

तीसरा गर्भाङ्क।

(स्थान मुगलसराय का स्टेशन)।

(मिठाईवाले, खिलौनेवाले, कुली और चपरासी इधर उधर फिरते हैं।)

(सुधाकर, एक विदेशी पण्डित और दलाल बैठे हैं।)

दलाल।—(बैठ के पान लगाता है) या दाता राम! कोई भागवान से भेंट कराना।

विदेशी पंडित।—(सुधाकर से) आप कौन हैं? कहां से आते हैं?

सुधाकर।—मैं ब्राह्मण हूं, काशी में रहता हूं और लाहोर से आता हूं।

विदेशी पंडित।—क्या आप का घर काशी ही जी में है?

सुधाकर।—जी हां।

विदेशी पंडित।—भला काशी कैसा नगर है।

सुधाकर।—वाह! आप काशी का वृत्तान्त अब तक नहीं जानते? भला त्रैलोक्य में और दूसरा ऐसा कौन नगर है जिस को काशी की समता दी जाय?

विदेशी पण्डित।—भला कुछ वहां की शोभा हम भी सुनें।

सुधाकर।—सुनिये, काशी का नामान्तर वाराणसी है। जहां भगवती जन्हुनन्दिनी उत्तरवाहिनी हो कर धनुषाकार तीन ओर से ऐसी लपटी हैं, मानो इस को शिव की प्यारी जान कर गोद में ले कर आलिङ्गन कर

रही हैं, और अपने पवित्र जलकण के स्पर्श से तापत्रय दूर करती हुई मनुष्य मात्र को पवित्र करती हैं। उसी गङ्गा के तट पर पुण्यात्माओं के बनाए बड़े बड़े घाटों के ऊपर दोमंजिले, चौमंजिले, पंचमंजिले और सतमंजिले ऊंचे ऊंचे घर आकाश से बातें कर रहे हैं। मानो हिमालय के श्वेत शृङ्ग सब गंगासेवन करने को एकत्र हुए हैं। उस में भी माधोराय के दोनों धरहरे तो ऐसे दूर से दिखाई देते हैं; मानो बाहर के पथिकों को काशी अपने दोनों हाथ ऊंचे कर के बुलाती है। सांझ सबेरे घाटों पर असंख्य स्त्री पुरुष नहाते हुए ब्राह्मण लोग संध्या वा शास्त्रार्थ करते हुए, ऐसे दिखलाई देते हैं मानों कुबेरपुरी में, अलकानंदा में किन्नरगण और ऋषिगण अवगाहन करते हैं; और नगाड़ा नफीरी, शंख घण्टा, झांझ स्तव और जय का तुमुलशब्द ऐसा गूंजता है मानों पहाड़ों की तराई में मयूरों की प्रतिध्वनि हो रही है; उस में भी जब कभी दूर से सांझ को वा बड़े सबेरे नौबत की सुहानी धुन कान में आती है तो कुछ ऐसी भली मालूम पड़ती है कि एक प्रकार की झपकी सी आने लगती है। और घाटों पर सबेरे धूप की झलक और सांझ को जल में घाटों की परछाहीं की शोभा भी देखते ही बन जाती है।

जहांब्रज ललना लालित चरण युगल पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानन्द घन बासुदेव आप ही श्री गोपाल लाल रूप धारण कर के प्रेमियों को दर्शन मात्र से कृत कृत्य करते हैं और भी बिन्दुमाधवादि अनेक रूप से अपने नाम धाम के स्मरण, दर्शन, चिन्तनादि से पतितों को पावन करते हुए बिराजमान हैं।

जिन मन्दिरों में प्रातःकाल सन्ध्या समय दर्शकों की भीड़ जमी हुई है, कहीं कथा, कहीं हरिकीर्त्तन, कहीं नाम कीर्त्तन, कहीं ललित, कहीं नाटक. कहीं भगवत लीला अनुकरणइत्यादि अनेक कौतुकों के मिस से भी भगवान के नाम गुण में लोग मग्न हो रहे हैं।

जहां तारकेश्वर विश्वेश्वरादि नाम धारी भगवान भवानीपति तारकब्रह्म का उपदेश कर के तनुत्याग मात्र से ज्ञानियों को भी दुर्लभ अपुनर्भव परम मोक्षपद— मनुष्य, पशु, कीट, पतंगादि आपामर जीव मात्र को दे कर उसी क्षण अनेक कल्प सञ्चित महापाप पुञ्ज भस्म कर देते हैं।

जहां अंधे. लंगड़े, लूले, बहरे, मूर्ख और निरुद्यम आलसी जीवों को भी भगवती अन्नपूर्णा अन्न वस्त्रादि दे कर माता की भांति पालन करती हैं।

जहां अब तक देव. दानव, गंन्धर्व्व, सिद्ध, चारण, विद्याधर. देवर्षि, राजर्षि गण और सब उत्तम २ तीर्थ— कोई मूर्त्तिमान, कोई छिप कर और कोई रूपान्तर कर के नित्य निवास करते हैं।

जहां मूर्त्तिमान सदाशिव प्रसन्न वदन आशुतोष सकल सद्गुणैक रत्नाकर, विनयैकनिकेतन, निखिल विद्याविशारद, प्रशान्तहृदय, गुणिजनसमाश्रय, धार्म्मिकप्रवर, काशीनरेश महाराजाधिराज श्रीमदीश्वरी प्रसाद नारायण सिंह बहादुर और उन के कुमारोपम कुमार श्री प्रभु नारायण सिंह बहादुर दान धर्म्मसभा रामलीलादि के मिस से धर्म्मोन्नति करते हुए और असत् कर्म्म नीहार को सूर्य्य की भांति नाशते हुए पुत्र की तरह अपनी प्रजा का पालन करते हैं।

जहां श्रीमती चक्रवर्त्तिनिचयपूजितपादपीठा श्री मतीमहाराज्ञी विक्टोरिया के शासनानुवर्त्ती अनेक कमिश्नर, जज, कलेक्टरादि अपने अपने काम में सावधान प्रजा को हाथ पर लिए रहते हैं और प्रजा उन के विकट दंड के सर्वदा जागने के भरोसे नित्य सुख से सोती है।

जहां राजा शंभूनारायण सिंह, बाबू फतहनारायण सिंह, बाबू गुरुदास, बाबू माधव दास, विश्वेश्वर दास, राय नारायण दास इत्यादि बड़े २ प्रतिष्ठित और धनिक तथा श्री बापूदेव शास्त्री, श्रीबाल शास्त्री से प्रसिद्ध पण्डित, श्रीराजा शिवप्रसाद, सैयद अहमद ख़ां बहादुर ऐसे योग्य पुरुष, मूलचन्द्र मिस्तरी से शिल्पविद्या निपुण, वाजपेयी जी से तन्त्रीकार, श्री पंडित बेचन जी, शीतलजी, श्रीताराचरण से संस्कृत के सेवक और हरिश्चन्द्र से भाषा के कवि, बाबू अमृतलाल, मुन्शी गन्नूलाल, श्यामसुन्दरलाल से शास्त्रव्यसनी और एकान्तसेवी, श्रीस्वामी विश्वरूपानन्द से यति, श्रीस्वामी विशुद्धानन्द से धर्म्मोपदेष्टा, दातृगणैकाग्रगण्य श्री महाराजाधिराज विजयनगराधिपति से विदेशी सर्वदा निवास कर के नगर की शोभा दिन दूनी रात चौगुनी करते रहते हैं।

जहां क्वीन्स कालिज (जिस के भीतर बाहर चारो ओर श्लोक और दोहे खुदे हैं) जयनारायन कालिज से बड़े, बंगाली टोला नार्मल और लंडन मिशन से मध्यम, तथा हरिश्चन्द्र स्कूल से छोटे अनेक विद्यामन्दिर, जिन में संस्कृत, अंगरेजी, हिन्दी, फारसी, बंगला,

महाराष्ट्री की शिक्षा पा कर प्रति वर्ष अनेक विद्यार्थी विद्योत्तीर्ण हो कर प्रतिष्ठा लाभ करते हैं; इन के अतिरिक्त पण्डितों के घर में तथा हिन्दी फारसी पाठकों की निज शाला में अलग ही लोग शिक्षा पाते हैं, और राय संकटाप्रसाद के परिश्रमोत्पन्न पबलिकलाइब्रेरी, मुंशी सीतलप्रसाद का सरस्वती भवन, हरिश्चन्द्र का सरस्वती भंडार इत्यादि अनेक पुस्तकमंदिर हैं, जिन में साधारण लोग सब विद्या की पुस्तकें देखने पाते हैं।

जहां मानमन्दिर ऐसे यन्त्रभवन, सारनाथ की धमेख से प्राचीनावशेष चिन्ह, विश्वनाथ के मन्दिर का वृषभ और स्वर्णशिखर, राजा चेतसिंह के गङ्गा पार के मन्दिर, कश्मीरी मलकी हवेली और क्वीन्स कालिज की शिल्पविद्या और माधोराय के धरहरे की उंचाई देख कर विदेशी जन सर्वदा चकित रहते हैं।

जहां महाराज विजयनगर के तथा सरकार के स्थापित स्त्री विद्यामन्दिर, औषधालय, अन्धभवन, उन्मत्तागार, इत्यादिक लोकद्वय साधक अनेक कीर्त्तिकर कार्य्य, वैसे ही चूड़वाले इत्यादि महाजनों का सदावर्त्त और श्री महाराजाधिराज सेंधिया आदि के अटल सत्र से ऐसे अनेक दीनों के आश्रयभूत स्थान हैं जिन में उन को अनायास ही भोजनाच्छादन मिलता है।

जहां अहोवल शास्त्री, जगन्नाथ शास्त्री, पण्डित काकाराम, पंडित मायादत्त, पंडित हीरानन्द चौबे, काशीनाथ शास्त्री, पण्डित भवदेव, पण्डित सुखलाल ऐसे धुरन्धर पंडित और भी जिन का नाम इस समय

मुझे स्मरण नहीं आता, अनेक ऐसे ऐसे हुए हैं जिन की विद्या मानों मंडन मिश्र की परम्परा पूरी करती थी।

जहां विदेशी अनेक तत्ववेत्ता धार्म्मिक धनीजन घर बार कुटुम्ब देश विदेश छोड़ कर निवास करते हुए तत्वचिन्ता में मग्न सुख दुःख भुलाए संसार को यथारूप में देखते सुख से निवास करते हैं।

जहां पण्डित लोग विद्यार्थियों को ऋक्, यजुः, साम, अथर्व, महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण, स्मृति, न्याय, व्याकरण, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, शैव, वैष्णव, अलङ्कार, साहित्य, ज्योतिष इत्यादि शास्त्र सहज में पढ़ाते हुए मूर्तिमान गुरु और व्यास से शोभित काशी की विद्यापीठता सत्य करते हैं।

जहां भिन्न देश निवासी आस्तिक विद्यार्थीगण परस्पर देवमन्दिरों में, घाटों पर, अध्यापकों के घर में, पण्डित सभाओं में वा मार्ग में मिल कर शास्त्रार्थ करते हुए अनर्गल धारा प्रवाह संस्कृत भाषण में सुनने वालों का चित्त हरण करते हैं।

जहां स्वर लय छन्द मात्रा, हस्तकम्पादि से शुद्ध वेदपाठ की ध्वनि से जो मार्ग में चलने वा घर बैठे सुन पड़ती है, तपोबन की शोभा का अनुभव होता है।

जहां द्रविड़, मगध, कान्यकुब्ज, महाराष्ट्र, बङ्गाल, पञ्जाब, गुजरात इत्यादि अनेक देश के लोग परस्पर मिले हुए अपना २ काम करते दिखाते हैं और वे एक २ जाति के लोग जिन मुहल्लों में बसे हैं वहां जाने से ऐसा ज्ञात होता है मानों उसी देश में आए

हैं। जैसा बंगाली टोले में ढाके का, लहौरी टोले में अमृतसर का और ब्रह्माघाट में पूने का भ्रम होता है।

जहां निराहार, पयाहार, यताहार, भिक्षाहार, रक्ताम्बर, श्वेताम्बर, नीलाम्बर,* चर्म्माम्बर, दिगम्बर, दण्डी, संन्यासी, ब्रह्मचारी, योगी, यती, सेवड़ा, फक़ीर, सुथरेसाईं, कनफटे, ऊर्द्धबाहु, गिरी, पुरी, भारती, बन, पर्वत, सरस्वती, किनारामी, कबीरी, दादूपन्थी, नान्हकसाही, उदासी, रामानन्दी, कौल, अघोरी, शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर इत्यादि हिन्दू और ऐसे ही अनेक भांति के मुसल्मान फक़ीर नित्य इधर से उधर भिक्षा उपार्जन करते फिरते हैं और इसी भांति सब अंधे, लंगड़े, लूले, दीन, पंगु, असमर्थ लोग भी भिक्षा पाते हैं, यहां तक कि आधी काशी केवल दाता लोगों के भरोसे नित्य अन्न खाती है।

जहां हीरा, मोती, रुपया, पैसा, कपड़ा, अन्न, घी, तेल, अतर, फुलेल, पुस्तक, खिलौने इत्यादि की दूकानों पर हजारों लोग काम करते हुए मोल लेते बेंचते दलाली करते दिखाई पड़ते हैं।

जहां की बनी कमख़ाब, बाफता, हमरू, समरू, गुलबदन, पोत, बनारसी साड़ी, दुपट्टे, पीताम्बर, उपरने, चोलखण्ड, गोंटा, पट्टा, इत्यादि अनेक उत्तम वस्तु देश विदेश जाती हैं और जहां की मिठाई, खिलौने, चित्र, टिकुली, बीड़ा इत्यादि और भी अनेक सामग्री ऐसी उत्तम होती हैं कि दूसरे नगर में कदापि स्वप्न में भी नहीं बन सकती।

जहां प्रसादी तुलसी माला फूल से पवित्र और स्नार्या स्त्री पुरुषों के अंग के विविध चंदन, कस्तूरी,

अतर इत्यादि सुगन्धि द्रव्य के मादक आमोद संयुक्त परम शीतल तापत्रय विमोचक गंगा जी के कण, स्पर्श मात्र से अनेक लौकिक अलौकिक ताप से तापित मनुष्यों का चित्त सर्वदा शीतल करते हैं।

जहां अनेक रंगों के कपड़े पहने सोरहो सिंगार, बत्तीसो आभरण सजे, पान खाए, मिस्सी की धड़ी जमाए, जोबन मदमाती झमझमाती हुई बारबिलासिनी देवदर्शन, वैद्य, ज्योतिषी, गुणीगृहगमन, जारमिलन, गानश्रावन, उपबन भ्रमण इत्यादि अनेक बहानों से राजपथ में इधर उधर झूमती घूमती नैनों के पटे फेरतीं बिचारे दीन पुरुषों को ठगती फिरती हैं और कहां तक कहैं काशी काशी ही है। काशी सी नगरी त्रैलोक्य में दूसरी नहीं है। आप देखियेगा तभी जानियेगा, बहुत कहना व्यर्थ है।

विदेशी पंडित।—वाह वाह! आप के वर्णन से मेरे चित्त का काशीदर्शन का उत्साह चतुर्गुण हो गया। यों तो मैं सीधा कलकत्ते जाता, पर अब काशी बिना देखे कहीं न जाऊंगा। आप ने तो ऐसा वर्णन किया मानो चित्र सामने खड़ा कर दिया। कहिए वहां और कौन कौन गुणी और दाता लोग हैं जिन से मिलूं।

सुधाकर।—मैं तो पूर्व ही कह चुका हूं कि काशी गुणी और धनियों की खान है, यद्यपि यहां के बड़े बड़े पंडित जो स्वर्गवासी हुए उन से अब होने कठिन हैं, तथापि अब भी जो लोग हैं दर्शनीय और स्मरणीय हैं। फिर इन व्यक्तियों के दर्शन भी दुर्लभ हो जायंगे, और यहां के दाताओं का तो कुछ पूछना ही नहीं। चूड़की

कोठीवालों ने पंडित काकाराम जी के ऋण के हेतु एक साथ बीस सहस्र मुद्रा दीं। राजा पटनीमल के बांधे धर्मचिन्ह कर्मनाशा का पुल और अनेक धर्म्मशाला, कूपं, तालाव, पुल इत्यादि भारतवर्ष के प्रायः सब तीर्थों पर विद्यमान हैं। साह गोपालदास के भाई साह भवानी दास की भी ऐसी ही उज्वल कीर्त्ति है और भी दीवान केवल कृष्ण चम्पत राय अमीन इत्यादि बड़े बड़े दानी इसी सौ वर्ष के भीतर हुए हैं। बाबू राजेन्द्र मित्र की बांधी देवी पूजा, बाबू गुरुदास मित्र के यहां अब भी बड़े धूम से प्रति वर्ष होती है। अभी राजा देव नारायण सिंह ही ऐसे गुणज्ञ हो गए हैं कि उन के यहां से कोई खाली हाथ नहीं फिरा। अब भी बाबू हरिश्चन्द्र इत्यादि गुणग्राहक इस नगर की शोभा की भांति विद्यमान हैं। अभी लाला बिहारी लाल और मुन्शी रामप्रताप जी ने कायस्थ जाति का उद्धार कर के कैसा उत्तम कार्य्य किया, आप मेरे मित्र रामचन्द्र ही को देखिएगा उस ने बाल्यावस्था ही में लक्षावधि मुद्रा व्यय कर दी है। अभी बाबू हरखचन्द मरे हैं जो एक गोदान नित्य कर के जलपान करते थे। कोई भी फकीर यहां से खाली नहीं गया। दस पन्द्रह रामलीला इन्हीं काशी-वालों के व्यय से प्रति वर्ष होती है और भी हजारों पुण्यकार्य यहां हुआ ही करते हैं। आप को सब से मिलाऊंगा आप काशी चलें तो सही।

विदेशी पंडित।—लाहोर क्यों गये थे ?

सुधाकर।—(लम्बी सांस ले कर) कुछ न पूछिये योंही सैर को गया था।

दलाल।—(सुधाकर से) का गुरु। कुछ पण्डित जी से बोहनी वाड़े का तार होय तो हम भी साथै चलूचैं।

सुधाकर।—तार तो पण्डित बाड़ा है कुछ विशेष नहीं जान पड़ता।

दलाल।—तब भी फोक सऊंड़ का मालवाड़ा कहां तक न लेऊ चियै।

सुधाकर।—अब जो पलते पलते पलै।

विदेशी पण्डित।—यह इन्हों ने किस भाषा में बात की?

सुधाकर।—यह काशी ही की बोली है, ये दलाल हैं, सो पूछते थे कि पण्डित जी कहां उतरेंगे।

विदेशी पण्डित।—तो हम तो अपने एक सम्बन्धी के यहां नीलकण्ठ पर उतरेंगे।

सुधाकर।—ठीक है, पर मैं आप को अपने घर अवश्य ले जाऊंगा।

विदेशी पंडित। हां हां, इस में कोई सन्देह है? मैं अवश्य चलूंगा।

(स्टेशन का घंटा बजता है और जवनिका गिरती है।)

इति प्रतिच्छविवाराणसी नामक तीसरा गर्भाङ्क समाप्त हुआ।

चतुर्थ गर्भाङ्क।

(स्थान बुभुक्षितदीक्षित को बैठक)

(बुभुक्षितदीक्षित, गप्प पण्डित, रामभट्ट, गोपाल शास्त्री, चंबूभट्ट, माधव शास्त्री आदि लोग पान बीड़ा खाते और भांगबूटी की तजवीज करते बैठे हैं; इतने में महाश कोतवाल अर्थात् निमंत्रण करनेवाला आ कर चौक में से दीक्षित को पुकारता है।)

महाश।—काहो—बुभुक्षितदीक्षित अहेत ?

बुभुक्षित।— इतना सुनते ही हाथ का पान रख कर) कोण आहे ? (महाश आगे बढ़ता है) वाह महाश तु आहेश काय ? काय बाबा आज किती ब्राह्मण आमच्या तडात देतोस ? सरदारानी किती सांगीतलेत (थोड़ा ठहर कर) कायरे ठोक्याच्या कमख्यात सहस्र भोजन कुणाच्या यजमानाचे चाल्ले आहे ?

महाश।—दीक्षित जी ! आज ब्राह्मणाची अशी मारामार झाली कि मी कांहीं सांगू सकत नाहीं—कोण तो पचड़ा !!

बुभुक्षित।—खरे, काय मारामार झाली ? अच्छा ये तर बैठकेत पण आखेरीस आमचे तडाची काय व्यवस्था ? ब्राह्मण आणलेस की नाहीं ? कांहात हलवीचत आलास ?

महाश। - (बैठक में बैठ कर जल मांगता है) दीक्षित जी थोडस पाणी द्या तहान बहुत लागली आहे।

बुभुक्षित।— अच्छा भाई, थोड़ासा ठहर अत्ता उनातून आला आहेस बूटी ही बनतेच आहे पाहिजे तर बूठीचेच पाणी पी। अच्छा सांग तर कसे काय ब्राह्मण किती मिलाले?

महाश।—गुरु ब्राह्मण तो आज २५ निकाले, यार लोग आप के शागिर्द हैं कि और किस के?

चंबूभट्ट —(बड़े आनन्द से) क्या भाई सच कहो—२५ ब्राह्मण मिलाले?

महाश।—हो गुरु! २५ ब्राह्मण तर तुमने सहस्र भोजनाचे, परन्तु आजचे बसन्त पूजेचे तर शिवाय च—आणखी सभे करता तर पेच लावलाच आहे पण—

गोपाल, माधव शास्त्री।— घबड़ाकर) काय महाश पण कां? सभेचे काम कुणा कडे आहे? अणखी सभा कधी होणार? आं?

महाश।—पण- इतकेच कि हा यजमान पाप नगरात रहतो, आणि याला एक कन्या आहे ती गत भर्तृका असून सकेशा आहे आणि तीर्थस्थलीं तर क्षौर करणे अवश्य पण क्षौरे करुण कन्येची शोभा जाईल या करिता जर कोणी असा शास्त्रीय आधार दाखवील तर एक हजार रुपयाची सभा करण्या चा त्यांचा विचार आहे व या कामांत धनतुंदिल शास्त्री नीं हात घातला आहे।

गप्पपंडित।—अंः, तो ऐसी क्षुल्लक बात के हेतु शास्त्राधार का क्या काम है? इस मे तो बहुत से आधार मिलेंगे।

माधवशास्त्री।—हां पण्डित जी आप ठीक कहते हैं, क्योंकि हम लोगों का वाक्य और ईश्वर का वाक्य समान ही

समझना चाहिये "विप्रवाक्ये जनार्दनः" "ब्राह्मणो मम दैवतं" इत्यादि ।

गोपाल ।—ठीकच आहे, आणि जरि कदाचित् असल्या दुघट कामानी आम्हो लोकदृष्ट्या निन्द्य झालो तथापि वन्द्यच आहो कारण श्रीमद्भागवतांत हो लिहले आहे "विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्येत कश्चनेत्यादि"।

गप्पपण्डित ।—हां जी, और इस में निन्द्य होने का भी क्या कारण? इस में शास्त्र के प्रमाण बहुत से हैं और युक्ति तो हुई है, पहिले यहां देखिये कि इस घोर कर्म से दो मनुष्यों को अर्थात् वह कन्या और उस के स्वजन इन को बहुत ही दुःख होगा और उस के प्रतिबंध से सब को परम आनन्द होगा। तब यहां इस वचन को देखिये

"येन केनाप्युपायेन यस्य कस्यापि देहिनः।
सन्तोषं जनयेत् प्राज्ञस्तदेवेश्वर पूजनं॥"

बुभुक्षित ।—और ऐसे बहुत से उदाहरण भी इसी काशी में होते आये हैं। दूसरा काशीखंड ही में कहा है "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः।"

चम्बूभट्ट ।—मुर्खतागार का भी यह वाक्य है "अथवा वाललवनं जीवनार्द्रं नवद्भवेत्" संन्तोषसिन्धु में भी "स्रकेशैव हि संस्थाप्या यदि स्यात्तोषदा नृणां"।

महाश ।—दीक्षित जी! बूटीझाली—अब छने जल्दी कारण बहुत प्यासा जीव होऊन गेला अणखी अझून पुष्कल ब्राह्मण सांगायचे आहेत।

बुभुक्षित ।—(भांग की गोली और जल, बरतन, कटोरा, साफी ले कर) शास्त्री जी! थोड़े से बढ़ा तर।

माधव शास्त्री ।—दीक्षित जी ! हे मांझें कांम नव्हे, कारण मी अपला खाली पीएयाचा मालिक आहे, मला छानता येत नाहीं (गोपाल शास्त्री की ओर दिखला कर) ये इस में परम प्रवीण हैं ।

गोपाल शास्त्री ।—अच्छा दीक्षित जी—मीच आलो सही ।

चंबूभट्ट ।—(इन सबों को अपने काम में निमग्न देख कर) बरें मग महाश अखेरीस तडाचे किती ब्राह्मण सहस्र-भोजना चे व वसंत पूजेंचे किती ?

महाश ।—दीक्षिताचे तडात आज एकन्दर २५ ब्राह्मण; पैकि १५ सहस्र भोजना कडे आणि १० वसन्त पूजे कडे—

माधव शास्त्री ।—आणि सभेचे ?

महाश ।—सभेंचे तर मी सांगीतलेच की धनतुंदिल शास्त्री चे अधिकारात आहे, आणि दोन तीन दिवसात ते बंदोबस्त करणार आहेत ।

गप्प पंडित ।—क्यों महाश । इस सभा में कोई गौड़ पंडित भी हैं वा नहीं ?

महाश ।—हां पंडित जी, वह बात छोड़ दीजिये, इस में तो केवल दाक्षिणात्य. द्राविड और क्वचित् तैलंग भी होंगे, परन्तु सुना है कि जो इस में अनुमति करेंगे वे भी अवश्य सभासद होंगे ।

गप्प पंडित ।—इतना ही न—तब तो मैं ने पहिले ही कहा है, माधव शास्त्री ! अब भाई यह सभा दिलवाना आप के हाथ में है ।

माधव ।—हां पंडित जी, मैं तो अपने शक्त्यनुसार प्रयत्न करता हूं, क्योंकि प्रायः काका (धन तुंदिल शास्त्री) जो

कुछ करते हैं उस का सब प्रबंध मुझे ही सौंप देते हैं। (कुछ ठहर कर) हां, पर पंडित जी, अच्छा स्मरण हुआ, आप से और न्यू फांड (New fond) शास्त्री से बहुत परिचय है, उन ही से आप प्रवेश कीजिये, क्योंकि उन से और काका जी से गहरी मित्रता है।

गप्प पंडित।—क्या क्या शास्त्री जी? न्यू - क्या? मैं ने यह कहीं सुना नहीं।

गोपाल।—कभी सुना नहीं इसी हेतु न्यू फांड।

गप्प पंडित। मित्र! मेरा ठट्ठा मत करो। मैं यह तुम्हारी बोली नहीं समझता। क्या यह किसी का नाम है? मुझे मालूम होता है कि कदाचित् यह द्रविड़ त्रिलिंग आदि देश के मनुष्य का नाम होगा। क्योंकि उधर की बोली मैं ने सुना है उस में मूर्द्धन्यवर्ण प्रायः बहुत रहते हैं।

माधव शास्त्री।—ठीक पंडित जी, अब आप का तर्क शास्त्र पढ़ना आधा सफल हुआ। अस्तु ये उधर ही के हैं जो आप के साथ रामनगर गये थे। जिन्हों ने घर में तमाशेवाले की बैठक की थी—

गप्प पंडित।—हां हां, अब स्मरण हुआ, परन्तु उन का नाम परोपकारी शास्त्री है और तुम क्या भांड कहते हो?

गोपाल शास्त्री।—वाह पंडित जी; भांड नहीं कहा फांड कहा—न्यू फांड अर्थात् नये शौखीन। सारांश प्राचीन शौखीन लोगों ने जो जो कुछ पदार्थ उत्पन्न किये उपभुक्त किये उन ही उन के उच्छिष्ट पदार्थ का अवलम्बन कर के वा प्राचीन रसिकों की चाल चलन को अच्छी समझ हम को भी लोक वैसा ही कहैं आदि से खींच

खींच के रसिकता लाना, क्या शास्त्री जी ऐसा न इस का अर्थ ?—

माधव शास्त्री ।—भाई, मुझे क्यों नाहक इस में डालते हो—

गप्प पंडित ।—अच्छा, जो होय मुझे उस के नाम से क्या काम । व्यक्ति मैं ने जानी परन्तु माधव जी आप कहते हैं और मुझ से उन से भी पूर्ण परिचय है, और उन को उन का नाम सच शोभता है, परन्तु भाई वे तो बड़े आढ्य मान्य हैं और कंजूस भी हैं—और क्या तुम से उन से मित्रता नहीं मुझ से अधिक है। यहां तक शयनासन तक वे तुम को परकीय नहीं समझते ।

माधव शास्त्री ।—पंडित जी ! वह सर्व ठीक है, परन्तु अब वह भूतकालीन हुई । कारण 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'—

बुभुक्षित ।—हां पंडित जी ! अब क्षण भर इधर बूटी को देखिये, लीजिये (एक कटोरा दे कर पुनः दूसरा देते हैं)।

गप्प पंडित ।—वाह दीक्षित जी, बहुत ही बढ़िया हुई ।

चंबूभट्ट —(सब को बूटी दे कर अपनी पारी आई देख कर) हां हां दीक्षित जी, तिकड़ेच खतम करा मी आज काल पीत नाहीं ।

गोपाल, माधव ।—कां भट जी ! पुरे आंतां, हे नखरे कुठे शिकलात, या—प्या—हवेने व्यर्थ थंडी होते ।

चंबूभट्ट ।—नाहीं भाई मी सत्य सांगतो, मला सोसत नाहीं तुम्हाला माझे नखरे वाटतात पण हे प्रायः इथले काशीं-तलेच आहेत, व अपल्या सारख्यांच्या परम प्रियतम सफेत खड़खड़ीत उपर्णी पांघरणार अनाथा बाला नींच शिकविलेत बरें ।

(सब आग्रह कर के उस को पिलाते हैं।)

महाश।—कां गुरु दीक्षित जी अब पलेती जमविली पाहिजे।

बुभुक्षित। – हां भाई, घे तो बंटा आणि लाव तर एक दोन त्रार।

महाश।—(इतने में अपना पान लगा कर खाता है और दीक्षित जी से) दीक्षित जी, १५ ब्राह्मण ठोक्याच्या कमग्ध्यात पाठवा; दाहा बाजता पाने मांडली जातील, आणि आज रात्री बसंत पूजेस १० ब्राह्मण लवकर पाठवा कारण मग दूसरे तह्राचे ब्राह्मण येतील (ऐसा कहता हुआ चला जाता है)।

बुभुक्षित।—(उस को पुकारते हुए जाते हैं) महाश ! दक्षणा कितनी ?

महाश।—(वहीं से चार अंगुली दिखा कर) गंडा (कह कर गया)।

माधव।—दीक्षित जी ! क्या कहीं बहरी ओर चलियेगा ?

गोपाल।—(दीक्षित से) हां गुरु, चलिये आज बड़ी वहां लहरा है।

बुभुक्षित।—भाई बहरीवर मी जाऊन इकडचा बंदोबस्त कोण करील ?

गोपाल।—अं: गुरु इत के १५ ब्राह्मणात घबड़ावता। सर्व भक्तास सांगीतले ब्राह्मणजे झाले। आज न्यूफांड की पत्ती है।

गप्प पंडित ।—क्या परोपकारी की पत्ती है? खाली पत्ती ही है कि और भी कुछ है? नहीं तो मैं भी चलूं।

माधव शास्त्री ।—पत्ती क्या बड़ी बड़ी लहरा है, एक तो बड़ा भारी प्रदर्शन होगा और नाना रीति के नांच, नये नये रंग देख पड़ेंगे।

गप्प पंडित ।—क्यों शास्त्री जी मुझे यह बड़ा आश्चर्य्य ज्ञात होता है और इस से परिहासोक्ति सी देख पड़ती है। क्यौंकि उस के यहां नाच रंग होना सूर्य का पश्चिमाभिमुख उगना है।

गोपाल ।—पंडित जी! इसी कारण इन का नाम न्यू फांड है। और तिस पर यह एक गुह्य कारण से होता है। वह मैं और कभी आप से निवेदन करूंगा, वा मार्ग में—

बुभुक्षित ।—(सर्वभक्ष नाम अपने लड़के को सब व्यवस्था कह कर आप पान पलती और रस्सी लोटा और एक पंखी ले कर) हां भाई मेरी सब तय्यारी है।

माधव, गोपाल ।—चलिये पंडित जी, वैसे ही धनतुंदिल शास्त्री जी के यहां पहुंचेंगे। (सब उठ कर बाहर आते हैं।)

चंबूभट्ट ।—मैं तो भाई जाता हूं क्यौंकि संध्या समय हुआ (चला जाता है)।

गप्प पंडित ।—किधर जाना पड़ेगा?

माधव शास्त्री ।—शंखोद्धारा क्यौंकि आजकल श्रावण मास

में और कहां लहरा ? घराऊ कजरी, श्लोक, लावनी, ठुमरी, कटौवल बोली ठोली सब उधर ही।

गप्प पंडित।—ठीक शास्त्री जी, अब मेरे ध्यान में पहुंचा, आज काल शंखोद्धारा का बड़ा माहात्म्य है। भला पर यह अब कहां सुनने में आवेगा ? क्योंकि इस में घराऊ विशेषण दिया है।

गोपाल।—आः हमारा माधव शास्त्री जहां हैं वहां सब कुछ ठीक ही होगा, इस का परम आश्रय प्राणप्रिय रामचन्द्र बाबू आप को विदित है कि नहीं ? उस के यहां ये सब नित्य कृत्य हैं।

गप्प पण्डित।—रामचन्द्र हम ही को क्या परन्तु मेरे जान प्रायः यह जिस को विदित नहीं ऐसा स्वल्प ही निकलेगा। विशेष कर के रसिकों को; उस को तो मैं खूब जानता हूं।

गोपाल।—कुछ रोज हमारे शास्त्री जी भी थे परन्तु हमारा क्या उन का कहिये ऐसा दुर्भाग्य हुआ कि अब वर्ष २ दर्शन नहीं होने पाता। रामचन्द्र जी तो इन को अपने भ्राता के समान पालन करते थे और इन से बड़ा प्रेम रखते थे। अस्तु सारांश पण्डित जी वहां रामचन्द्र जी के बगीचे में जायंगे वहां सब लहरा देख पड़ेगी और इस मिस से तौ भी उन का दर्शन होगा।

बुभुक्षित।—अरे पहिले नवे शौखिनाचे इथे जाऊं तिथे काय आहे हे पाहूं आणि नंतर रामचंद्राकडे भुकूं।

माधव शास्त्री।—अच्छा तसेच होय आजकल न्यू फांड शास्त्री यानी ही बहुत उदारता धरली आहे बहुत सी

पाखरें ही पालकी आहेत तो सर्व दृष्टीस पड़तील पण भाई मी आत यायचा नाहीं। कारण मला पाहून त्याना त्रास होतो।

गोपाल।—अच्छा तिथ वर तर चलशील आगे देखा जायगा।

[सब जाते हैं और जवनिका गिरती है।]

धिस्सधिसद्विजकृत्यविकर्तनोनाम चतुर्थ गर्भाङ्कः।

॥ प्रथम अङ्क समाप्त हुआ ॥